हिन्दी दलित कविता में अभिव्यक्त समाज–व्यवस्था

दीप कुमार मित्तल
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–10067

शोध सार :
मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य मनुष्यों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए मानव–समाज का निर्माण हुआ। विश्व के सभी मानव समाज एक जैसे नहीं हैं। अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों के आधार पर उनका अलग–अलग ढंग से निर्माण और विकास हुआ है। भारत का सामाजिक जीवन किसी एक व्यवस्था के अनुसार गतिशील नहीं है। फिर भी, एक से अधिक सामाजिक व्यवस्थाओं के होते हुए भी देश के अधिसंख्यक मनुष्य जाति–वर्ण की नींव पर आधृत सामाजिक ढाँचे के अनुसार अपनी सामाजिक भूमिका निभाते हैं। वर्ण–व्यवस्था के अनुसार पृथ्वी पर जन्म लेने वाले व्यक्तियों को चार प्रकार के वर्णों में विभाजित किया जाता है। ये वर्ण हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वर्ण–व्यवस्था की चौखट को मजबूत करने के लिए जाति–व्यवस्था का निर्माण हुआ। इसने एक वर्ण को अनेक स्तरों में बहसंख्यक समुदाय को गुलामी का जीवन जीवन जीने के लिए अभिशप्त कर दिया। इस जाति और वर्ण व्यवस्था के खिलाफ प्राचीन काल से ही संघर्ष हो रहा है। लेकिन आधुनिक काल में बड़े स्तर पर इस समस्या के निराकरण की मुहीम डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में चलाई गई। इसी सामाजिक आन्दोलन की साहित्यिक अभिव्यक्ति दलित साहित्य है। दलित साहित्य का विकास मराठी भाषा में हुआ। हिन्दी में भी यह मराठी से ही आया।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य मनुष्यों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए मानव–समाज का निर्माण हुआ। विश्व के सभी मानव समाज एक जैसे नहीं हैं। अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों के आधार पर उनका अलग–अलग ढंग से निर्माण और विकास हुआ है। भारत का सामाजिक जीवन किसी एक व्यवस्था के अनुसार गतिशील नहीं है। यहाँ एक ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अनुसार बहुसंख्यक लोग अपना सामाजिक जीवन पूर्ण करते हैं, वहीं दूसरी ओर देश के कुछ भागों में मातृसत्तात्मक व्यवस्था का भी अस्तित्व है। इसी के साथ आदिवासी समुदायों की भी अपनी–अपनी सामाजिक व्यवस्थाएं हैं।

भारत में एक से अधिक सामाजिक व्यवस्था–व्यवस्थाओं के होते हुए भी देश के अधिसंख्यक मनुष्य जाति–वर्ण की नींव पर आधृत सामाजिक ढाँचे के अनुसार अपनी सामाजिक भूमिका निभाते हैं। वर्ण–व्यवस्था एक पितृसत्तात्मक व्यवस्था है, जिसका सबसे जटिल विभाजन जाति–व्यवस्था है। वर्ण–व्यवस्था के अनुसार पृथ्वी पर जन्म लेने वाले व्यक्तियों को चार प्रकार के वर्गों में विभाजित किया जाता है। ये वर्ग हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चार वर्गों को ही वर्ण कहा जाता है। इन वर्णों के अनुसार ही मनुष्य की आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक भूमिका तय होती है। यह विभाजन जन्म के आधार पर होता है। वर्ण–व्यवस्था की चौखट को मजबूत करने के लिए जाति–व्यवस्था का निर्माण हुआ। इसने एक वर्ण को अनेक स्तरों में बाँट दिया। इस प्रकार वर्ण और जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को खंड–खंड में बाँट कर यहाँ के बहुसंख्यक समुदाय को गुलामी का जीवन जीवन जीने के लिए अभिशप्त कर दिया। एक मनुष्य की सामाजिक हैसियत उसके कर्मों के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी जाति और वर्ण के आधार पर होने लगी।

इस जाति और वर्ण व्यवस्था के खिलाफ प्राचीन काल से ही संघर्ष हो रहा है। लेकिन आधुनिक काल में बड़े स्तर पर इस समस्या के निराकरण की मुहीम शुरू हुई। यह मुहीम डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में चलाई गई। बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने जीवन–भर उस वर्ग के लिए संघर्ष किया, जिसकी समाज में पशुओं से भी बदतर स्थिति थी। ऐसे दलित शोषित और उत्पीड़ित वर्ग को मानवीय अधिकार दिलाने हेतु डॉ. अम्बेडकर जीवन–पर्यन्त संघर्षरत रहे। यह संघर्ष महात्मा ज्योतिबा फुले के द्वारा शुरु हुआ, जिसे बाबा साहेब बहुत आगे ले

गए। यह इस संघर्ष की सफलता का सूचक है कि आज भी असंख्य लोग इस संघर्ष को बढ़ा रहे है और यह आंदोलन अपनी मंजिल के निकट पहुँच गया है।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन एक सामाजिक आंदोलन था, जिसमें सदियों से चली आ रही परम्पराओं का मूल्यांकन होने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इन प्रयत्नों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ। परिणामतः वंचित तबकों की स्थिति सुधरने लगी। वंचित वर्गों की स्थिति में जैसे–जैसे सुधार आया, वैसे–वैसे उनके संघर्षों को गति मिली। इन बदलती हुई परिस्थितियों ने अस्मिता संबंधी सवालों को साहित्य के केन्द्र में स्थापित किया, जिससे स्त्री, दलित, दलित और आदिवासी साहित्य का विकास हुआ। हिन्दी क्षेत्र में अस्मिता संबंधी बहसें अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा बाद में शुरु हुई। अतः हिन्दी में दलित साहित्य लेखन भी बाद में शुरु हुआ। आमतौर पर 'दलित' शब्द का प्रयोग भारतीय समाज के वंचित और शोषित लोगों के लिए किया जाता है। लेकिन दलित विमर्श और दलित साहित्य के संदभ में 'दलित' शब्द अम्बेडकरवादी चेतना के रूप में प्रयुक्त होता है। यह शब्द वंचित तबकों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति हेतु अम्बेडकरवादी संघर्ष का प्रतीक है।

दलित शब्द और दलित साहित्य के विषय में ओमप्रकाश वाल्मोकि ने लिखा है ''दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अंत्यज की श्रेणी में रखा है। उसका दलन हुआ। शोषण हुआ, इस समूह को संविधान में अनुसूचित जातियां कहा गया है जो जन्मना अछूत है।...वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।''[2] अन्य दलित विचारक भी दलितों के द्वारा सृजित साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं। वैसे यह प्रश्न अभी बहस के केन्द्र में है कि क्या गैर दलित भी दलित साहित्य लिख सकता है?

दलितों के द्वारा साहित्य लेखन तो बहुत पहले से हो रहा है लेकिन उसे दलित साहित्य की कोटि में शामिल नहीं किया जाता है, क्योंकि उस साहित्य में दलित चेतना दिखलाई नहीं देती है। दलित चेतना का विकास आधुनिककाल में हुआ। दलित विचारकों का मानना है कि ''दलित चेतना की निर्मिति का प्राथमिक बिन्दु है आत्मसम्मान, गरिमा और मौलिक अधिकारा की प्राप्ति, जो ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के विचार एवं दर्शन पर आधारित है।''[3] दलित चेतना ही वह बिन्दु है जिससे दलित साहित्य को अलग पहचान मिलती है। अतः कबीर, रैदास आदि मध्यकालीन संतों की रचनाओं को दलित विद्वान दलित साहित्य की कोटि में शामिल नहीं करते हैं। इसी कारण दलित चेतना के अभाव में गैर दलितों के लेखन को भी दलित साहित्य में शामिल नहीं करते हैं। इसका एक दूसरा पहलू भी है, दलित लेखकों का मानना ह कि गैर दलित लेखक दलित वर्ग की वास्तविकताओं को भोगता नहीं है, अतः वह उनकी समस्याओं का वास्तविक चित्रण नहीं कर सकता है। इसी आधार पर दलित चिंतक प्रेमचंद और निराला जैसे प्रगतिशील रचनाकारों के साहित्य को दलित साहित्य नहीं मानते हैं।

हिन्दी दलित कविता मे डॉ. अम्बेडकर विभिन्न रूपों में दिखलाई देते हैं। इसके साथ ही दलित कविता अम्बेडकरवादी विचारधारा का मूल्यांकन भी करती है। दलितों को मानवीय अधिकार दिलवाने में बाबा साहेब अम्बेडकर का योगदान अविस्मरणीय है। दलित कवित अपने ऐसे महान् नायक के योगदान का बार–बार स्मरण करती है। शायद ही कोई दलित कवि हो, जिसने बाबा साहेब के योगदान का स्मरण न किया हो। अशोक भारती की 'ब्राह्मणवाद का विनाशक' नामक कविता में डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष के संदर्भ में लिखा है –

''मैं ही हूँ
मध्य एशिया से अयोध्या तक
तुम्हारी सर्वश्रेष्ठता को ललकारने वाला,
विद्रोह का स्वर–क्रान्ति का परचम,
मैं हूँ एकलव्य–अर्जुन का घमण्ड तोड़ने वाला।
याद रहे, मैं ही रहूँगा –
आज ही नहीं हमेशा
तुम्हारी व्यवस्था के खिलाफ,
विद्रोह का परचम–क्रांति का हिरावल,
मैं हूँ अम्बेडकर– ब्राह्मणवाद का विनाशक।''[4]

दलित कविता में डॉ. अम्बेडकर के स्वप्नों की झलक दिखलाई देती है। उन्होंने केवल दलित वर्ग के लिए ही कार्य नहीं किया, बल्कि वे संपूर्ण मानवता के लिए जीवन–भर प्रयासरत रहे। उनके समय भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों की पराधीनता को भारतीय वर्ण–व्यवस्था से जोड़कर देखा। सजातीय विवाह के नाम पर स्त्रियों की स्वतंत्रता वर्ण–व्यवस्था के पोषकों ने छीन ली। बाबा साहेब का मानना था कि ''सजातीय विवाह एक मात्र लक्षण है, जो जातिप्रथा की विशेषता है और यदि हम यह जताने में सफल हो जाएं कि सजातीय विवाह ही क्यों होते हैं तो हम व्यावहारिक रूप से यह साबित कर सकते हैं कि जातियों की उत्पत्ति कैसे हुई और इसका ताना–बाना क्या है?''[5] डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि स्त्री–मुक्ति के बिना जाति–प्रभा का अंत संभव नहीं है। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उन्होने महिलाओं को पिता की संपत्ति में अधिकार दिलवाने हेतु 'हिंदू कोड बिल' संसद में पेश किया। लेकिन दुर्भाग्य से वह बिल पास न हो सका। सन् 1951 में इसी कारण उन्होंने कानून मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया। डॉ. अम्बेडकर केवल दलित कवियों के ही नायक नहीं हैं, अपितु दलित कवयित्रियां भी उनको अपना आदर्श मानती हैं। सुशीला टाकभौरे ने अपने कविता–संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' की एक कविता में लिखा है –

''दलित अछूत ढूंढ रहे थे
पीड़ाओं से मुक्ति का मार्ग
अंधेरे में आशा का प्रकाश
जिससे विश्वास कर सकें
दुनिया उनकी भी है
उन्हें भी जीने का हक है।
दलितों के मसीहा बाबा साहब ने
राह दिखाई है।''

शिक्षा, एकता और संघर्ष के बल पर ही दलित समाज अपना विकास कर सकता है, यह बाबा साहेब का मानना था। उन्होंने अनेक समस्याओं का सामना करते हुए विदेशों में पढाई की। अपने जीवन काल में उन्होंने मिलिंद कॉलेज औरंगाबाद, सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ कामर्स ऐंड इक्नॉमिक्स बम्बई, सिद्धार्थ लॉ कॉलेज बम्बई आदि की स्थापना की, जिससे उच्चशिक्षा के अवसर दलित वर्ग के लोगों को मिल सकें। शिक्षा एक माध्यम है जो व्यक्ति का अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाता है। दलित कविता में शिक्षा के प्रति सजगता का भाव मिलता है। जय प्रकाश कर्दम की 'लालटेन' नाम कविता की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

''रोज शाम को
लालटेन की चिमनी को साफ करना भी
मां नहीं भूलती थी।
दरअसल, मां को हमारी पढ़ाई–लिखाई की बड़ी चिंता रहती थी
इसलिए, मजदूरी करने से लेकर
हंडिया–रोटी और लत्ते–कपड़े तक
घर–बाहर के सारे काम
वह खुद करती थी
हमको वह
सिर्फ पढ़ने के लिए कहती
'पढ़ाई–लिखाई ही तुम्हारी पूंजी है,
पढ–लिख लोगे तो कहीं
अच्छा हिल्ला पा जाओगे
नहीं तो तसले ढोवोगे
दूसरों की गुलामी करोगे'
यही हमें समझाती''[6]

अपने अनुभव से दलित कवि शिक्षा के महत्त्व को कविता में अंकित करते हैं। जीवन में शिक्षा के लिए कठिनाईयों का अनुभव और भावी पीढ़ी के लिए, शिक्षा व उसके साधनों के प्रति सजगता का बोध दलित कविता की मुख्य विशेषता है।

समाज में दलितों को अधिकार दिलाने के लिए बाबा साहेब ने 20 मार्च 1927 को ढाई हजार लोगों के साथ महाड़ के 'चवदार तालाब' के जल का उपयोग करके असमानता का तीखा विरोध किया। ''अंबेडकर ने तालाब से पानी लेने के सवाल पर साफ कहा कि 'अगर हमने चवदार का पानी नहीं पिया तो हमारी जान के लाले पड़ जाएँगे, ऐसी कोई बात नहीं। हम तो यह दिखाना चाहते हैं कि औरों की तरह हम भी इंसान है।''[7] बाद में उन्होंने इस उद्देश्य के लिए नासिक में कालाराम मंदिर में प्रवेश करने हेतु सत्याग्रह किया। वैसे 25 दिसम्बर 1927 को महाड में डॉ. अम्बेडकर मनुस्मृति का दहन करवा चुके थे, लेकिन वे हिन्द धर्म से पूरी तरह अलग नहीं हुए थे। नासिक के आन्दोलन के पश्चात् ऐसी स्थितियां घटीं कि उन्होंने सन् 1935 में यह घोषणा की वे हिन्दू के रूप में नहीं मरेंगे। बाद में वे बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हो गए। 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में उन्होंने अपने तीन लाख 80 हजार समर्थकों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। उस समय उन्होंने कहा ''गले सड़े धर्म को त्यागकर जो असमानता और उत्पीड़न को मान्यता देता है, मैं आज एक नया जन्म ले रहा हूँ और नरक से मुक्ति प्राप्त कर रहा हूँ।''[8]

हिन्दी दलित कवित में भी हिन्दू परंपराओं, ग्रंथो, मिथकों को भी कटघरे में खड़ा किया जाता है। हिन्दू धर्म को एक हिंसक, अमानवीय, अनैतिक धर्म के रूप में चित्रित किया जाता है। बार–बार हिन्दू धर्म और समाज से अपने पूर्वजों के साथ किए गए अत्याचार और अनाचार का हिसाब मांगा जाता है। इतिहास बोध एवं अनुभव के आधार पर दलित कवि हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को नकारता है। मलखान सिंह की 'सुनो ब्राह्मण' कविता में उसकी सशक्त ध्वनि सुनाई पड़ती है –

''सुनो भूदेव
तुम्हारा कद
उसी दिन घट गया था
जिस दिन कि तुमने
न्याय के नाम पर
जीवन को चौखटों में कस
कसाई बाड़ा बना दिया था।''[9]

इसी कविता में कवि आगे कहता है –

''तो सुनो वशिष्ठ!
द्रोणाचार्य तुम भी सुना!
हम तुमसे घृणा करते हैं
तुम्हारे अतीत
तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं।''[10]

दलित कविता में यह बोध अनायास ही आ जाता है, क्योंकि इतिहास भले ही वर्तमान नहीं होता, लेकिन वर्तमान से पूर्णतः मुक्त भी नहीं होता।

बौद्ध धर्म को बाबा साहेब एक वैज्ञानिक और मानवीय धर्म मानते थे। दलित चिंतक इस विषय में एकमत नहीं है। इस विषय में डॉ. प्रणय कृष्ण ने लिखा है, ''दलित बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा बौद्ध विचारधारा को दलित विमर्श का अनिवार्य घटक मानता है, वहीं दूसरा हिस्सा इसकी आलोचना करता है। डॉ. तुलसीराम और डॉ. धर्मवीर को हम क्रमशः इन दो परस्पर विरोधी धारणाओं का प्रतिनिधि मान सकते हैं।''[11] इसकी गूँज हिन्दी दलित कविता में भी सुनाई देती है। हिन्दी के अधिकतर दलित कवि बौद्ध धर्म और गौतम बुद्ध को अपनी प्रेरणा का आदर्श मानते हैं। इन कवियों की दृष्टि में बौद्ध धर्म सहिष्णुता और सर्वजन–हिताय, सर्वजन–सुखाय का मार्ग प्रशस्त करता है। बौद्ध धर्म में करुणा को प्रमुखता दी गई है। अतः दलित कवियों की चाह है कि बुद्ध के मार्ग पर चलकर हम अपने अधिकार प्राप्त करें। दलित कवयित्री रजनी तिलक ने इस विषय में लिखा है –

''हम जंग नहीं चाहते,
जीना चाहते हैं
हम विनाश नहीं सृजन चाहते हैं
हम युद्ध नहीं
बुद्ध चाहते हैं।''[12]

उपरोक्त पंक्तियों में 'जीना' का अभिप्राय सामाजिक बराबरी से है, क्योंकि प्रेमपरक समाज का निर्माण समानता के अभाव में संभव नहीं है। वर्ण–व्यवस्था में समानता किसी भी स्तर पर नहीं आ सकती है, क्योंकि उसकी नींव ही ऊँच–नीच पर पड़ी है। अतः रजनी तिलक जैसे दलित रचनाकारों की दृष्टि में यह लक्ष्य बुद्ध के समतावादी मार्ग पर आरुढ़ होकर ही पाया जा सकता है।

लेकिन कुछ दलित कवि ऐसे हैं जो हिन्दू धर्म की तरह बौद्ध धर्म की महत्ता को भी स्वीकार नहीं करते हैं। दलित कवि श्यौराज सिंह 'बचैन' ने एक कविता में लिखा है–

''ना हम हिन्दू, बौद्ध ईसाई
और ना हम इस्लामी।
आदिधर्मियाँ हम भारत के
कह गए अछूत– स्वामी।।''[13]

इस संदर्भ में पुनः यह कहना आवश्यक लगता है कि बौद्धधर्म को लेकर सभी दलित चिंतक और साहित्यकार एकमत नहीं है। फिलहाल यह दलित विचारकों की बहस का विषय बना हुआ है।

अम्बेडकरवादी चेतना ने साहित्य की अन्तर्वस्तु पूर्णतः बदल दी। अब तक जो प्रतीक, मिथक साहित्य में श्रेष्ठता, सहिष्णुता, समानता के भाव को प्रस्तुत करते थे, दलित साहित्य में इनका उपयोग इसकी विपरीत स्थिति में होने लगा। इसका मूल कारण रचनाकारों का जीवनगत सच था, जिसे उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता ने बल प्रदान किया। केवल वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर यह बात भ्रामक सी जान पड़ती। परिणामतः हिन्दी दलित कविता की अन्तर्वस्तु परंपरागत साहित्यिक खांचों में नहीं समाती है। शम्बूक, सीता, एकलव्य, कर्ण, दोपदी, राम, कृष्ण जैसे पात्र एक नए रूप में सामने आते हैं। इसके साथ ही वेद, उपनिषद्, स्मृतियां, अन्य धर्मशास्त्रों एवं पौराणिक गाथाओं में व्यक्त दलित विरोधी छवि को हिन्दी दलित काव्य बेनकाब करता है। यह स्वर उत्पीड़न, भेदभाव की स्वानुभूति और इनसे मुक्ति की चाहत के कारण दलित कविता में बिना प्रयास के ही आ जाता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी दलित कविता अम्बेडकरवादी विचारधारा का साहित्यिक रूप है।सामाजिक विकास के लिए हिन्दी दलित कविता के उपर्युक्त पहलुओं को समझना जरूरी लगता है, क्योंकि बाबा साहेब का स्वप्न आज भी पूरा नहीं हो सका है।दलित कवि आमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में –

''वह दिन कब आयेगा
बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी''[14]

संदर्भ सूची

1. डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड 4, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1998, पृ. 3
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.14
3. डॉ. रामचन्द्र, दलित अस्मिता अंक–2, 2011, पृ. 22
4. अशोक भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, सं.–कंवल भारती, इतिहासबाध प्रकाशन इलाहाबाद, 2006, पृ. 192
5. डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड 1, पूर्वोक्त, 2011 पृ. 21
6. जय प्रकाश कर्दम, दलित निर्वाचित कविताएं, पूर्वोक्त, पृ. 82
7. देवेन्द्र चौबे, आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, ओरियंट ब्लैकस्वान, 2009, पृ. 223
8. वही, पृ. 225
9. मलखान सिंह, दलित निर्वाचित कविताएं, पूर्वोक्त, पृ. 50
10. वही, पृ. 51
11. डॉ. प्रणय कृष्ण, उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ. 308
12. रजनी तिलक, दलित निर्वाचित कविताएं, पूर्वोक्त, पृ. 148
13. श्यौराज सिंह 'बेचैन', बहुरि नहिं आवना, प्रवेशांक सितम्बर–नवम्बर, 2008
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित निर्वाचित कविताएं, पूर्वोक्त, पृ. 66